तृतीय अध्याय

"दिव्या" उपन्यास की ऐतिहासिकता पृ. ७१से ९९

स्वरूप

"दिव्या" उपन्यासकी ऐतिहासिक पृष्टभूमि -

धार्मस्थ को न्यायव्यवस्था

मद्र और गण परिषाद को राजनीती

मनोविनोद के साधन

समाजिक उध्यान और गोष्ठियोंका विवरण

तंत्रा-मंत्रा को निगढ बध्द साधाना

संकोर्ण मानवोय दास-व्यवस्था

मध्यपण्य एवं वेश्याविधियोंको स्थिति

केंद्रस का आक्रमण और मध्य व्यक्ति

तत्कालोन वेशाभूषा का चित्रण

निष्कर्ष

संदर्भ सूची

तृतीय अध्याय

स्वरूप

उपन्यासमें यशपालजीने बौध्दकालीन भारतकी सामाजिक, राजनीतिक एवं, धार्मिक परिस्थितियोंका विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। यशपालजी "इतिहास को पूजा और अन्धविश्वास को वस्तु नहीं मानते, बल्कि उनके अनुसार इतिहास विश्वास की नहीं विश्लेषण को वस्तु है। इतिहास मनुष्य का अपनी परम्परा में आत्मविश्लेषण है।"[1] इस आधारपर कल्पनीय औपन्यासिक तत्थ्योंके उपयोग के लिए देशकाल वातावरण को चुनने में "माली की भाँति कथाकार इतिहास के पुष्प को अपने रुचिर हाथोंसे चुनता है। इतिहासकार मूल का आकलन करता है और ऐतिहासिक उपन्यासकार उन मूल्योंके विशेष रस-गंधित पुष्पोंका संचयन।"[2]

लेकिन जहाँतक "दिव्या" को ऐतिहासिकता का प्रश्न है, उसके कथानक और पात्र सभी कल्पित है। उनका प्रणयन किसी भी ऐतिहासिक घटनाके आधारपर नहीं किया गया है, बल्कि उपन्यासकारने अपनी कल्पना के बलपर कहानी का निर्माण किया है। लेकिन जिस कालमें कथानक की कल्पना की गई है, उसके यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण तथा देशकाल आदि के चित्रणमें यशपालजी को अद्भुत सफलता मिली है।

ऐतिहासिक उपन्यासोंको - शुध्द ऐतिहासिक और

इतिहासाश्रित दो भाग किए जाते है। शुध्द ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की घटनाओं पात्रों एवं परिस्थितियों का पूर्ण अंकन और विवरण रहता है तथा इतिहासाश्रित उपन्यासों में इतिहास जैसा व्यापक प्रयोग नहीं होता, उसमें विस्तृत रूपसे देशकाल का उल्लेख मात्र रहता है, इतिहास वहाँ पृष्ठभूमि का काम करता है। "शुध्द ऐतिहासिक उपन्यासों के अंतर्गत श्री वृंदावनलाल वर्मा की "झाँसी की रानी" , प्रतापनारायण श्रीवास्तव का - "बेकसी का मजार", प्रसादजी का "ईरावती" और इतिहासाश्रित उपन्यासोंमें श्री भगवती चरण वर्मा की "चित्रलेखा" तथा यशपाल की "दिव्या" आदि की गणना की जाती है।"[3] इस कथन के आधार पर यह माना जा सकता है कि "दिव्या" उपन्यास इतिहास पर आधृत रचा गया है।

भारतीय इतिहास की ई.पू. दूसरी शताब्दि के वातावरण पर आधारित "दिव्या" का कथ्य है। यथार्थ रूपसे यशपालने "दिव्या" का कथानक नया चुना है। यशपालने "दिव्या" के प्राकथनमें स्वीकार किया है कि " अपने अतीत का मनन और मंथन, हम भविष्य का संकेत पानेके प्रयोजन से करते है।"[4] इसलिये "दिव्या" ऐतिहासिक उपन्यास न बनकर यथार्थत: ऐतिहासिक कल्पना प्रधान उपन्यास है। इसमें ऐतिहासिक वातावरण पर आधारित व्यक्ति और समाज की गति-और प्रवृत्ति का चित्र, तथा यथार्थ का जीवन अंकित है।"

इतिहासाश्रित उपन्यास की दृष्टिसे "दिव्या" के प्राक्कथन में अन्य विचार भी उल्लेखनीय है - "मनुष्य केवल परि-

स्थितियों को सुलझाता ही नहीं, वह परिस्थितियों का निर्माण भी करता है। वह प्राकृतिक और भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन करता है, सामाजिक परिस्थितियोंका वह स्रष्टा है।"[5] इसे पढ़कर भगवती चरण वर्मा के "चित्रलेखा" में वर्णित जीवन-दर्शन से संबंधित उक्ति महत्वपूर्ण है - "मनुष्य परिस्थितियों का दास है, वह कर्ता नहीं।"[6]

दिव्या के प्रतिपाद्य के सम्बन्ध में यशपालजीका विचार है कि "पुरुष से बड़ा है - केवल उसका अपना विश्वास और स्वयं: उसका ही रचा हुआ विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख विवशता अनुभव करता है और स्वयं: ही उसे बदल देता है। इसी सत्यको अपने चित्रमय अतीत की भूमिपर कल्पना में देखनेका प्रयत्न "दिव्या" है।"[7] लेखकने इस सत्य को देखने के लिए जिस चित्रमय अतीत की भूमि का आधार लिया है वह है भारतका बौध्दकालीन युग। बौध्दकालीन वातावरण की पृष्ठभूमि में लेखक ने "दिव्या" की रचना की है।

"दिव्या" उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यहाँ "दिव्या" के देशकाल वातावरण की ऐतिहासिक परिस्थितियों के प्राप्त सत्य सूत्रोंकी विवेचना करनेका प्रयास किया जा रहा है।

अशोक की मृत्यु [ई॰पू॰ २३२] के पश्चात उसका शासन काल निर्बल हो गया था। डॉ॰रामप्रसाद त्रिपाठी ने "विश्व

इतिहास' में इस सम्बन्ध में लिखा है कि- " अशोक के उत्तराधिकारियों की अयोग्यता, प्रांतो के शासकोंकी स्वच्छन्दता तथा अनाचार वैदिक धर्मावलम्बियोंकी उदासीनता, अनेक प्रोड़ अथवा धाष्ठित्रोक्स तृतीय के भारत की सीमा पर आक्रमण करनेके कारण मौर्यवंश से लोगोंका विश्वास उठ गया। १८५ ई.पू. में सेनापति पुष्यमित्राने मगध का सिंहासन वृहद्रथ से छीनकर अपने शुंगवंश का प्रभुत्व स्थापित किया, किन्तु उनके साम्राज्य से पश्चिमी पंजाब तथा महानदी से गोदावरी तक का कलिंग प्रांत और दक्षिण भारत निकल गये। वैक्ट्रिया के यूनानियोंने भारतमें हो रहे विप्लव से लाभ उठाकर अपनी सेना अयोध्या और पाटलीपुत्रा तक बढ़ा दिया किन्तु पुष्य मित्रा तथा उनके पुत्रा अग्निमित्रा और पौत्रा नागमित्रा ने उनको पीछे भगा दिया। उस विजय के उपलक्ष्य में पुष्यमित्राने अश्वमेध यज्ञ किया। उसके वंश ने लगभग सौ वर्ष तक राज्य किया। उसके सामने सबसे कठिन समस्या पश्चिमोत्तर प्रान्तो की ओर से यवनोंके आक्रमण की थी। पहले दो सम्राट तो इनको पश्चिमी पंजाब से आगे बढ़ने से रोके रहे, किन्तु बाद को वे भी असफल रहे। शुंग वंश का बचा खुचा प्रभाव ७३ ई.पू. में नष्ट हो गया। वहाँ वसुदेव ने कण्व वंश अधिपत्य स्थापित किया। किन्तु वह ४५ वर्षतक भी चल न सका। मगध का दबदबा बिगड़ जाने से पूर्वी पंजाब, मध्य भारत, राजस्थान, मालवा, गुजरात और सिन्ध में अनेक स्वतंत्रा गणराज्य उत्पन्न हो गये।"

इस परिपार्श्व के आधारपर देखा जाय तो एक बात स्पष्ट उभरती है कि पुष्यमित्रा ई.पू. दूसरी शताब्दि में भारतीय संस्कृति और इतिहास का अमर संरक्षक था। हमारी संस्कृति दो

हजार वर्ष पूर्व ही यवन प्रभावसे आक्रांत हो गयी होती यदि उसका प्रतिरोध करने के लिए शुंग राज्य के संस्थापक पुष्यमित्र और उनके वंशज न होते।

"दिव्या" मे प्रसिध्द विद्वान डा. भागवत शरण उपाध्यायने स्यालकोट तथा सागरपाली दो राज्योंकी सम्भावना, सागल नगरी के सन्दर्भ में उद्घाटित किया है। लेकिन इतिहासतज्ञ के अनुसार उस समयका साकल या सागल आज का स्यालकोट ही था। साकल में मीनॉडर या मिलिन्द का राज्य था। उन्होने मिलकर भारतपर आक्रमण किया था यह मान्यता उचित है। मिलिन्द जब सागल का शासक बना तब वह बौध्द धर्म में प्रशिक्षित या दीक्षित हो चुका था। मौर्य साम्राज्य के नष्ट होने पर पुष्यमित्रने ब्राहमण धर्म को पुनप्रतिष्ठा जनजीवन में की। मगध में बौध्द धर्मावलम्बियोंपर चतुर्दिक प्रहार हो रहा था; उनकी सुरक्षा के बहाने मगध पर आक्रमण किया। ऐतिहासिक सत्य यह है कि यह युध्द मिलिन्द और पुष्यमित्र के बीच हुआ था। "दिव्यावदान" के वर्णन में यह भी स्पष्ट है कि उसकी मृत्यु पुष्यमित्र के ही हाथों हुयी थी। इतिहास के इस सत्य को भी नहीं भुलाया जा सकता कि पुष्यमित्र ने पाटलिपुत्र से लेकर जालंधार तक के समस्त बौध्द बिहारों को अग्निमें भस्म करा दिया था।

श्री राजबली पाण्डेय ने अपनी "प्राचीन भारत" नामक पोथीमें यह सिध्द किया है कि यवनों और मगध सम्राटोंके बीच तीन युध्द हुये थे। मिलिंद डिमिट्रियस का जामाता था इस आधारपर यह कल्पना सत्य प्रतीत होती है कि मिलिन्द उसका

सेनानायक रहा होगा। परंतु यूनान इतिहासज्ञ टार्म के अनुसार एक युध्द का उल्लेख किया है। यही स्थापना उचित प्रतीत होती है।"[8]

यशपाल की 'दिव्या' में ऐतिहासिक वातावरणकी सांकेतिक चर्चा की है, परंतु यह ठिक ही है इतिहास के अंकन में अनेक त्रुटियोंकी सम्भावना "दिव्या" में है। परंतु उस युगके जीवन, समाज, संस्कृति, कला, न्याय, राजनीति एवं विश्रृंखलित धार्मिक परिस्थितियोंका अध्ययन करनेमें यशपाल सक्षम रहे है। कथाकार यशपाल ने लगभग बाईस सौ वर्ष प्राचीन भारतीय इतिहास के पटपर दिव्या में अपने कल्पना पुरूष को दौड़ाया है। रत्नाकर पांडेयजीने 'दिव्या' में निम्नलिखित परंपराओंका दर्शाया है -

१] धर्मस्थ की न्याय व्यवस्था

२] नर्तकियों के कला अधिष्ठित आयास की संगीतात्मक तन्मयता,

३] ब्राहमण, बौध्द एवं यवन संस्कृति का परस्पर अपने अस्तीत्व प्रस्थापन के निमित्त किया गया ऐतिहासिक प्रयत्न,

४] बौध्द संस्कृति के पतन और पौरूष से पलायन की विकृतियोंसे उद्भूत तन्त्र-मन्त्र की निगढ़ बध्द साधना।

५] गुरूकुल की परम्परा,

६] सामाजिक उदयान गोष्ठियों का विवरण,

७] संकीर्ण मानवीय दास व्यवस्था,

८] सामान्य जनजीवन की राजनैतिक विभिषिका,

९] केंद्रस का आक्रमण

१०] मध्यपण्य एवं वेश्यावीथियों की स्थिति

आदि का चित्रण "दिव्या" में किया है।

१] धर्मस्थ की न्यायव्यवस्था

मद्र और गणपरिषद की राजनीति और न्याय-व्यवस्थापर ऐतिहासिक तत्थ्य इस प्रकार है - " मद्र की राजधानी सागल थी और स्यालकोट के आसपास के प्रदेश को विजित करके उस समय उसका नाम भी मद्र रख लिया गया था। समुद्रगुप्त के साथभी इनका युध्द हुआ था और अवधेय नरेशोंको सहायता भी दी गयी थी। "[9] ऐतिहासिक सत्य यहाँ तक प्राप्त है।

"दिव्या", में धर्मस्थ प्रासाद तथा न्यायव्यवस्था का संकेत इस प्रकार है - " बहुद्रष्टा, उदार, महापण्डित धर्मस्थ का सम्पन्न प्रासाद, प्राचीर और उदयानोंसे वेष्टित था। इस प्रासाद में श्रृति-स्मृति, दर्शन-न्याय और तर्कका मंथन वर्णाश्रम नीति के पण्डितो, यवन दार्शनिकों और बौध्द भिक्षुओं द्वारा मत निर्णय और गोष्ठि-सुख के लिए भी निरंतर होता रहता था।"[10] "मधुपर्व" के अवसरपर कला में सर्वश्रेष्ट "सरस्वती-पुत्री" से सम्मानित लड़की, सर्वश्रेष्ट खड़गधारी को पुष्पमुकुट पहनाती थी। प्रथा से "दिव्या" ने दासपुत्र पृथुसेन को सर्वश्रेष्ट खड़गधारी घोषित किया था साथ-ही-साथ पुष्पमुकुट भी पहनाया। दासकुल में जन्म लेनेके कारण दिव्या की शिबिका में कन्धा लगानेसे वंचित पृथुसेन रूद्रधीर द्वारा अपमानित किया गया। षड़यंत्र स्वरूप "दिव्या" द्वारा धर्मस्थ से न्यायकी भीख माँगी और उचित न्याय मिला। अभिजात वंश के लोगोंकी ईच्छा के विरुध्द रूद्रधीर को हजार दिन का निष्कासन दण्ड भोगना भी पड़ा। इससे यह सिध्द

होता है कि - उस समय न्याय की व्यवस्था का पालन बड़ी ही कड़ाई के साथ किया जाता था।

मद्र और गणपरिषाद की राजनीति

पुष्यमित्र के समय प्रजातंत्र या गण की रचना राजपुतानेकी प्राचीन परंपराके अनुसार होती है। कुमार गुप्त के नेतृत्व में अनेक युध्दोंको जीता था। प्रजातंत्र एवं गण की व्यवस्था शासन और न्याय के लिए थी। गणों के अधिकार और कार्योंका विभाजन न्याय, शासन और संचलन आदि अलग-अलग विभागोंमें किया है।

"दिव्या" में इसी का विवेचन किया है - सेनापति की नियुक्ति जनसमाज द्वारा की जाती थी। गण के मुख्य प्रधान में ईश्वरत्व का आरोप किया जाता। नैतिकता की दृष्टिसें तद्युगीन गणों की यह यथार्थता महान उपलब्धि है।

मनोविनोद के साधन

नर्तकियों के कला अधिष्ठित आयास की संगीतात्मक तन्मयता :-

ऐतिहासिक तथ्य के अनुसार तत्कालीन मनोविनोद के साधनोंमें नाटक, संगीत, वाद्य, नृत्य, राज्यसभा, साहित्यिक वाद-विवाद, उध्यान, गोष्ठी, जल-क्रीड़ा, वसन्त-उत्सव आदि का आयोजन किया जाता था जिसमें आंगिक, वाचिक, आहार्य, अभिनय की अनुभूति होती थी।

"दिव्या" में संगीत और नृत्य के मध्य हंस और मधावा आदि का रूपक स्वाभाविक रूप से स्थिर किया है। भारतमें संगीत की अभिरुची पक्षियों के कलरव के पहले पशुयोनि से ही उद्भूत थी। हमारे यहाँ यह माना है कि सारा विश्व ब्रह्मा के संगीत गति में नियोजित है।

"दिव्या" में कला, संगीत, नृत्य, वादय, रूपक आदिका प्रयोग मान्यताओंके अनुरूप किया है। इसकी पूर्ति हेतु संगीत शालामें नृत्य शिक्षा नाटयाचार्य या कला की अधिष्टाता भी देवियाँ प्रदान की जाती थी। "दिव्या" में अंशु, मल्लिका, रत्नप्रभा, मादुल आदि अनेक नृत्य अधिष्ठात्री, कला नर्तकी, एवं संगीताचार्य अपनी संगीत तत्व को मान्यताओंके लिये बड़े ही जीवन्त रूप में वातावरणको संगीत रससे प्रफुल्लीत करते हुए प्रतीत होते थे। "दिव्या" मे ~ ~ "राजहंस" की भूमिका में स्वयं: मल्लिका प्रकट हुयी। मराली को बाँधी जाल की उपेक्षा कर राजहंस मराली के समीप कूद गया। मराली विभोर हो उठी। राजहंस भी बंधा गया, परंतु किल्लाल उन्मत्त होकर उन्होने बंधान की चिन्ता न की। वे मधुर शैथिल्य में आत्मविस्मृत होकर बंधान से निरपेक्ष थे। अनेक हंसशावक उस मराल मिथुन से उड़-उड़कर चारों दिशाओं में फैलने लगे। उत्साहित जनसमुह के उत्साह भरे साधुवाद से आकाश गूँज उठा। असंख्य मुखोंसे उन्मुक्त उच्छवास के वायु से मण्डप का वितान हिलोरने और दीप दण्डोंकी ज्वालायें काँपने लगी।" 11

दिव्या में साहित्यिक मनोविनोद के साधान नहीं थे। लेकिन पुष्यमित्र के युग की तरह शिविका में कंधा देना, ललाट पर स्वर्ण शेखर स्वंय नरेशनेबांधाने का उल्लेख है। जैसे -

" दास पुत्र को अभिजात वंश के युवकों के साथ शिविका में कंधा देने का अधिकार नहीं।"[12]

सामाजिक उद्यान और गोष्ठियों का विवरण

उद्यानों के अंतर्गत "दिव्या" में सरस्वती मंदिर, पुष्करणी-तट, व्यक्तिगत और राजन्य उद्यान में सभी भाग लेते थे। उनमें नरेश, राजपरिषद के सदस्य, राजन्य स्त्रिया, तथा सर्वसामान्य नागरिक भी थे। उसमें जलविहार और जलक्रीडा की लोकप्रचलित परंपरा थी। नदीपर कछड़ो में गोष्ठियाँ हुआ करती थी। गोष्ठियोंमें रसिक और सभ्य समाज भाग लेता था। पुष्करणी-तट, धर्मस्थ-प्रासाद, मल्लिका प्रासाद, रत्नप्रभा प्रासाद के कुंजो में मादक पेय स्थित स्थानोंपर सुहावने मौसमों और अन्य नाना प्रासादि संयोगों का वर्णन किया है, लेकिन जलाशय का अभाव है।

वसंतोत्सव का आयोजन प्रकृति सौंदर्य की अर्चना के लिए होता था। इन दिनोंमें नारियाँ मदनोत्सव मनाया करती थी। इस अवसरपर रमणीय आयोजन जनता द्वारा पुष्करणी तट, उद्यानों, जन-समाज अनेक स्थानोंपर करते थें। दिव्या में वसंतोत्सव के वर्णनका संकेत इस प्रकार हैं - " पटों में ढके जाने के अपमान ने दिव्या कों उद्बोधित किया। सहसा उसे याद आ गया प्राय: दो वर्ष पूर्व मधुपर्व के अवसर की संध्या। उसका सरस्वती पुत्री का मुकुट धारण कर, अभिजात वंशीय कुमारों के कंन्धोपर गर्व से शिविकारुढ़ होना। वह कातर पट की शरण लेगी पर नेत्रों के

बहते हुये आँसुओंकी चिन्ता न कर उसने अपने हाथ से पट उठा दिये और उत्तरिय से नेत्र पोंछकर मस्तक उठा लिया। "[13]

तंत्र - मंत्र की निगढ बंध साधना

तांत्रिकता का प्रचुर प्रभाव इस देशमें अनेक प्रकार के मन्त्रों को सृष्टि करने के लिए सहाय्यक हुआ। इसमें अनेक प्रकार की गुप्त, सीमित, क्षुद्र विशृंखलतायें जनताकों भ्रम और भुलावा देकर अकर्म करने को उत्तेज्जित करती थी। इसपर सांकेतिक प्रकाश यशपालने डाला है। जन सामान्य में प्रचलित अन्ध-विश्वास का अज्ञान दिव्या में सफलतापूर्वक चित्रित हुआ है -

"तान्त्रिक वैकुण्ठ से प्राप्त महाशक्ति का कवच निरंतर उसके हाथ में था। अपने हाथसे वह पृथुसेन की भुजा पर बाँधे बिना उसे समर में किस प्रकार जाने दे सकती थी ? उसके शरीर के प्रकट शैथिल्य के भीतर उसका प्रत्येक स्नायु अत्यंत तनी हुयी वीणा के तारों की भाँति चिन्ता की अँगुली के स्पर्श से निरंतर थरथरा रहा था। "[14]

संकीर्ण मानवीय दास व्यवस्था

वैयक्तिक समानता का बौध्दकाल में अभाव था। "उस समय की दास-प्रथा भारतीय संस्कृतिकी धवल कीर्तिकी चादर पर लगा हुआ वह काला धब्बा है जो कभी भी धोया नहीं जा सकता।"[15]दासों के साथ स्वामियोंका जो व्यवहार उस समय था

वैसा व्यवहार पशुओंके साथ भी आज के समाज में नहीं है। इस दुषित प्रथाने उपन्यासकारको इतना द्रवित किया है कि उसने तत्कालीन गण-राज्यों के पारस्परिक व्यापारिक सम्बन्ध को दिखलाने के लिए एक मात्र दास-दासियों के क्रय-विक्रय का ही प्रसंग दिया है। दासी को स्वामी के रखोले पशु से हीन जीवन बिताना पड़ता यशपालने इस प्रथा का वर्णन दिया है - " दास-दासियोंके रूपमें मनुष्योंका व्यवसाय करते रहने के कारण प्रतुल अनेक श्रेणी के मनुष्योंके शरीरों और स्वभावोंकी सूक्ष्मताओंसे उसी प्रकार परिचित था जैसे कुम्हार अनेक स्थानोंको मिट्टी, ------- पाटलोपुत्रमें उसके घर पर चार दासियाँ थी। इन दासियोंका कार्य केवल गृहसेवा या स्वामी के लिए भृत्य कमाना न था। वे प्रति अठरह मास पश्चात सन्तान उत्पन्न करतो थी। प्रतुल इन दासियों को न बेचकर इनको सन्तान बेचता था। अभ्यस्त हो जाने के कारण वे दासियाँ सन्तान वियोग का दुःख सहज ही सह जाती। एक सन्तान का वियोग होते समय भी दो-तीन सन्ताने उनके समीप रहती थी। पौष्टिक भोजन से उनकी प्रसव की निर्बलता तुरन्त दूर हो जाती।" [16]

भूधर के घरसे पुरोहित चक्रधर के घर जानेपर "दिव्या" की जो दुर्दशा हुई वह मानवता के पाप की अत्यंत करूण कहानी है। इसके मूलमें शोषण की वृत्ति को पकड़कर सारी ऐतिहासिक परिस्थितियोंकी विवेचना की है।

मध्यपण्य एवं वेश्या वीथियों की स्थिति

उस समय ठेकेदारों द्वारा पालित कोढ़ वेश्या समाज

था। मद्य से मदमत्त सामान्य नागरिक जहाँ आंगिक भूषा के लिए वेश्याओंके गोरस का गंध अपने शरीर में समाधृत कर लेना चाहते थे, वही उदर की ज्वालासे वेश्यायें भी पूर्णत: इस कृत्य के लिए प्रेरित होती थी। "दिव्या" में यशपालने इस जीवित सत्य को सांकेतिक शैलीमें उद्घाटित किया है - "रुद्रधीर या पृथुसेन दिव्या के आत्मर्पण की वेदना के प्रति सहानुभूति के ग्राहक बनकर नहीं उपस्थित हुए है। दिव्या को महादेवी का पद अथवा महा सेनापति की पत्नी का आमंत्रण उसके यौवन की मादकता के कारण ही है।"[17] इस प्रकार सूक्ष्म, सांकेतिक नारी विवशताका वातावरण उस युग के देशकाल में वर्तमान को यथार्थ लेखनी से सत्यत: चित्रित करनेमें यशपाल की सफलता ऐतिहासिक मानी जाती है।

केंद्रस का आक्रमण

इस उपन्यास में यशपालने पीड़ित निम्नवर्ग के अनेक चित्र-चित्रित करनेका प्रयास किया है। सागल पर केंद्रस आक्रमण कर रहा है, परंतु लोग आनन्द से मद्यपान कर रहे है। एक व्यक्ति मद्य पीकर उसका पैसा नहीं चुकाता और कहता है -

" बुढ़िया, तेरे दो स्वर्णमुद्रामेंसे एक गणकोष में जावेगा और एक राजपुरुषों के घरमें। केंद्रस हमें क्या लूटेगा। उनसे पूर्व मद्र के राजपुरुष ही हमें लूट लेंगे। अरी बुढ़िया, बलात् बलि लेने आनेवाले राजपुरुषोंको तू बिना मूल्य मद्य पिला अनुग्रहित होती है और अपने दीन ग्राहकोंसे जल मिले घूँट-घूँट मद्य का दूना मूल्य मांगती है।"[18]

तभी निकट बैठा हुआ मारिश उसकी व्याख्या करता हुआ मद्य के उन्माद में कहता है - "मित्र यही तो अनोखी चाल है। कुत्ता कुत्ते को काटता है और मालिक के अन्न को रक्षा करता है। जैसे हम तुम राजपुरुषोंको प्रसन्नता के लिए एक दूसरेका हनन करते है। मित्र तुम्हारी कटि पर भी राजपुरुष को मुद्रा का पट्टा बंधा जाय तो जानते हो क्या होगा ? तुम ड्योड़ी पर बन्धे कूकर की भाँति पथपर चलने वाले कूकर पर घुर्राओगे। देखो स्वयं: खाने में उतना पुण्य नहीं, जितना ब्राहमण को खिलानेमें। जानतेहो क्यों ? ब्राहमण देवता का कूकर है। "[19]

इस तरह उपन्यास में उस समय के आधारपर केंद्रस के आक्रमण और लोगोंको स्थितिका चित्रण किया है।

वैवाहिक रुढ़ि परंपरा

भारतीय जीवन का महत्वपूर्ण संस्कार वैवाहिक मान्यता है। प्राचीन काल में स्वयंवर प्रथा, गन्धर्व विवाह आदि तथा असुर पध्दति का विवाह प्रचलित था। "प्राय: स्वच्छन्द युवक-युवतियाँ स्वयंवर के माध्यमसे विभिन्न प्रकारके घात-प्रतिघातोंको सहनकर, कामवृत्ति और सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होकर पाणिग्रहण करते थे। इसे गन्धर्व विवाह कहते है। कण्व के आश्रम में तपोवासिनी वनकन्या शकुन्तला के चारु आकर्षण के प्रति दुष्यन्त के हृदयने अपनी धरतीपर पहली बार क्रांति मचा दी थी, तभी से गान्धर्व विवाह की रिति का प्रचलन हुआ है।"[20]

इसी के आधारपर यशपालके "दिव्या" में ब्राहमण कन्या "दिव्या" के प्रति वैवाहिक आकर्षण एक दास पृथुसेन में निर्मान होता है यह एक प्रकारकी क्रांति है क्यों कि "वर्ण विवाहो में प्राय: ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्य अपने निम्न जाति से परिणय करते थे। ब्राहमण कुलमें उत्पन्न दिव्या गान्धर्व विवाह की इच्छा पृथुसेन से आकर्षित होकर रखती है। परतुं वातावरण के परिणामस्वरूप "दिव्या" महादेवी का पद न चाहकर अपने आत्मप्रेमी को चाहती है, इसलिए मारिश की ओर आकर्षित होती है। रहीम ने लिखा है -

"टूट टाट घर टाटियो टपकत्व टूट।
पिय के बाँह उसिसर्व सुख के लूट।"

इस तरह दिव्या का प्रेम मारिश के विचारोंसे प्रभावित हो पौरुष्य के बाहोपर सुख का अनुभाव करता है।

यशपाल तत्कालीन वेशभूषा के चित्रणमें अधिक सफल हुए है। लेखक की चित्रण की कलात्मकतासे हम आज से शताब्दियों पीछे भारतमें दृष्टि दौडाते है -

लोग विभिन्न अवसरोंपर विभिन्न वस्त्राभूषण धारण करते थे तथा वर्ण और जाति के अनुसार लोगों के विशिष्ट वस्त्राभूषण भी थे। अभिजात पुरुष और कुल स्त्रियोंनेपर्व के योग्य और वर्ण-वंश की स्थिति के अनुसार धारण किये थे - "मधुपर्व उत्सव के अवसरपर - "सिर पर ऊँचे शिरस्त्राण बाँधे, पीठ पर ढाल लटकाये, हाथ में भाला लिये राजपुरुष उत्सुकता से

उमड़ते जनप्रवाहसे मण्डप के मार्ग और मण्डपमें गण-परिषाद के सदस्यों सामन्तों, अभिजात वंशजों, अग्र श्रेष्टियों, श्रेणी जेठ्ठको और कुल नारियों के स्थान को रखा।"[20]

"ब्राह्मण स्वर्ण के तार से कढ़े लाल रेशम के उष्णीश से सिर के केशोंको बाँधे थे। उनके मस्तक और भुजापर श्वेत चंदन का बारि था। स्मश्रु मुँडे हुए। उनके कण्ठ को मुक्तामालाओं में कृष्ण रुद्राक्ष शोभित थे।----- क्षत्रिय स्वर्ण-खचित शुभ्र वस्त्र धारण किये थे, उनके कानों, कण्ठ, भुजा और कलाइयों पर रत्न-जटित आभुषण थे, चुस्त अँगरखा श्रेष्ठियों के वस्त्र बहुमूल्य परंतु ढीले - ढाले। गण-परिषाद के सदस्य कंधोंपर अजानु केशरी कंचुक धारण किये थे। बौध्द भिक्षु अपने धर्म के अनुसार वस्त्र धारण करते थे।"[21] इससे त्रिभुवनसिंह का मत द्रुष्टव्य है कि - "अत: उपन्यासकारने तत्कालीन वेशभूषा आदि के चित्रण में अत्यंत सतर्कता से काम लिया है। लेखक की चित्रणकी कलात्मक प्रतिभा इतनी प्रौढ़ है कि हम आज से शताब्दियों पीछे भारत में उसके साथ विचरण करने लगते है। ----- ऐतिहासिक सत्योंको तटस्थ भावसे चित्रित कर लेखकने आधुनिक समाजको एक अमूल्य वस्तु दी है।"[22]

निष्कर्ष

यशपाल का "दिव्या" ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में पुष्यमित्र, पतंजलि और मिलिन्द यह तीन ऐतिहासिक नाम ऐतिहासिक तत्थों के केंद्र बिंदु रहे हैं। इससे इतिहासपर

कोई प्रकाश नहीं पड़ता। यथार्थ रूपसे यशपालने दूसरी शताब्दि के वातावरण के आधारपर "दिव्या"का कथानक नया चुना है। यशपालने "दिव्या" के प्राक्कथानमें स्वीकार किया है कि - "अपने अतीत का मनन और मंथान हम भाविष्य का संकेत पाने के प्रयोजन से करते हैं।" इसलिए "दिव्या" ऐतिहासिक उपन्यास न बनकर यथार्थत: ऐतिहासिक कल्पना प्रधान उपन्यास है। इसमें ऐतिहासिक वातावरण पर आधारित व्यक्ति और समाजको गति और प्रवृत्ति का चित्र तथा यथार्थका जीवन अंकित किया है।

संदर्भ सूची

१] त्रिभुवन सिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - पृ. ३०२
२] रत्नाकर पाण्डेय - यशपाल की दिव्या - पृ. १७०
३] त्रिभुवनसिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ. ३०२
४] यशपाल - दिव्या प्राक्कथनसे पृ. ७
५] यशपाल - दिव्या " पृ. ७
६] कुसुम वार्ष्णेय भगवती चरण वर्मा [चित्रलेखासे सीधी सच्ची बाते तक] पृ. १०, ११
७] यशपाल - दिव्या प्राक्कथनसे पृ. ८
८] रत्नाकर पाण्डेय - यशपालकी दिव्या - पृ. १७२, ७३
९] रत्नाकर पाण्डेय - यशपालकी दिव्या - पृ. १७६
१०] यशपाल - दिव्या पृ. २०
११] यशपाल - दिव्या पृ. १६
१२] यशपाल - दिव्या पृ. १८
१३] यशपाल - दिव्या पृ.
१४] यशपाल - दिव्या पृ.
१५] त्रिभुवनसिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ. ३१३
१६] यशपाल - दिव्या पृ. १११
१७] रत्नाकर पाण्डेय - यशपालकी दिव्या पृ. १८६
१८[यशपाल की दिव्या पृ. ५३ रत्नाकर पाण्डेय
१९] यशपाल-दिव्या पृ. ५३
२०] रत्नकार पाण्डेय - यशपालकी दिव्या पृ. १८८
२१] यशपाल - दिव्या पृ. ९, १०, ११
२२] त्रिभुवनसिंह - हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ. १७३